यज्ञों पर आधारित लेख श्रृंखला का तृतीय लेख

चेतना की शिखर यात्रा पार्ट 2,अनेकों अन्य sources,

परम पूज्य गुरुदेव का उद्बोधन- ब्राह्मणत्व का आवाहन

उस दिन का अग्निहोत्र संपन्न होने के बाद आचार्यश्री ने साधकों को संबोधित किया। उस उद्बोधन में “ब्राह्मण धर्म” की व्याख्या और नरमेध के महत्व की चर्चा की। उन्होंने कहा कि हमारे देश की संस्कृति का क्षरण हो रहा है। उसका कारण यही है कि हमारे यहां सच्चे ब्राह्मणों का अभाव हो गया है। पिछले 20 वर्षों से हम निरंतर अनुभव करते आ रहे हैं कि जब तक ब्राह्मणत्व को अर्जित नहीं कर लेते तब तक भारतीय संस्कृति का उत्थान नहीं किया जा सकता। शंकराचार्य का उदाहरण हमारे सामने है। उन्होंने समाधि नहीं लगाई, उपवास करके शरीर को नहीं सुखाया, आंखे बंद करके निर्जन वन में भगवान का ध्यान नहीं किया बल्कि

“भारतीय संस्कृति की रक्षा” का बीड़ा उठाया। शरीर में गंभीर रोग होते हुए भी वे उत्तर से दक्षिण तक भारतीय संस्कृति का संदेश देते हुए घूमते रहे । ब्राह्मणत्व अर्जित करने का अर्थ है तप और त्याग भरा जीवन ।

नरमेध की व्याख्या करते हुए आचार्यश्री ने कहा कि यह भी ऋषि, ब्राह्मण परम्परा का ही एक अंग है। इसके द्वारा हम अपना सब कुछ, यहाँ तक कि जीवन भी समाज और संस्कृति की सेवा के लिए अर्पित कर देते हैं। यहाँ हो रहे नरमेध में 27 व्यक्ति अपना सब कुछ देश और समाज की सेवा में न्यौछावर कर देंगे। उनके इस बलिदान को नरमेध का नाम दिया गया है।

दशमी का यज्ञ अग्निहोत्र संपन्न होने के बाद दिया गया यह उद्बोधन सुनने वालों की संख्या ज्यादा नहीं थी। मुश्किल से 2500-3000 लोग रहे होंगे लेकिन संदेश

और संकल्प भावी समाज साधना की आधारशिला रखने वाला था।

21 अप्रैल की शाम को पूर्णाहुति समारोह शुरू हुआ। शाम सात बजे मंगलाचरण और भजन से आरंभ हुए इस कार्यक्रम में स्वामी परमानंद ने एक संदेश दिया। उसके बाद आचार्यश्री का उद्बोधन था। चैत्र महीने में शाम को 6:00-6:30 बजे तक खासा अंधेरा हो जाता था। समारोह स्थल चारों तरफ फैली रोशनी से खासा जगमग कर रहा था। आचार्यश्री के परिचयात्मक भाषण के बाद उस समय के लोकसभा अध्यक्ष अनंतशयनम आयंगर ने उद्घाटन भाषण दिया।

अनंतशयनम आयंगर जी का भाषण

आयंगर दक्षिण भारत के थे। वे तमिल के साथ अंग्रेजी और दूसरी विदेशी भाषाओं के भी अच्छे विद्वान थे। हिन्दी भी जानते थे लेकिन बोलने का अभ्यास नहीं था। उन्होंने उद्घाटन के बाद हिन्दी में बोलना शुरू किया।

उन्होंने कहा कि मैं यहाँ गायत्री माता के दर्शन करने आया हूँ। गायत्री मंत्र में भगवान को तेजरूप में मान कर केवल अपनी ही नहीं वरन संसार भर की बुद्धि निर्मल और उज्वल करने की प्रार्थना की गई है। जब श्रीकृष्ण से अर्जुन ने पूछा कि मैं भगवान का ज्ञान कैसे प्राप्त करूँ और कैसे उनका ध्यान करूं तो भगवान ने यही कहा कि

तुम जहाँ कहीं भी प्रकाश देखो, वहीं समझ लो कि भगवान हैं। अर्जुन ने कहा कि मैं एक ही स्थान पर भगवान के दर्शन करना चाहता हूँ। तब भगवान ने उसे विराट रूप दिखाया। संसार में जितने भी व्यक्ति हैं, उन सबके सिर भगवान के सिर है। उनके हाथ भगवान के हाथ हैं, उनके पैर भगवान के पैर हैं। इसका अर्थ यह है कि सब जनता मिल कर ही भगवान का रूप है और उसकी सेवा करना ही भगवान की सच्ची पूजा है।

लोकसभा अध्यक्ष ने भारतीय धर्म संस्कृति के आधारभूत सिद्धांतों का संदर्भ दिया और कहा:

हमारे धर्म का सार यह है कि हम सारे संसार को अपना समझें। उसे भगवान का स्वरूप समझ उसकी सेवा में रत रहें। इस तरह की प्रेरणा, शक्ति और बुद्धि गायत्री उपासना से ही मिलती है। सनातन धर्म या भारतीय

धर्म के अनुयायी को इस मंत्र का आश्रय लेना ही चाहिए।

अनंतशयनम आयंगर के बाद मथुरा के प्रसिद्ध समाज सेवी लक्ष्मीनारायण आचार्य, समारोह के स्वागताध्यक्ष बोले । आचार्यश्री के साथ स्वतंत्रता संग्राम में संघर्ष करते रहे जगन प्रसाद रावत तब उत्तर प्रदेश सरकार में उपमंत्री हो गये थे। वे भी पूर्णाहुति समारोह में आये थे। कृष्णदत्त वाजपेयी, ब्रह्मचारी विश्व कल्याण हितैषी कन्या गुरुकुल की संचालक लक्ष्मी देवी, डॉ० सीताराम कपूर, द्वारकाप्रसाद भार्गव और गीता आश्रम के हरिहर जी के व्याख्यान हुए। व्याख्यानों की श्रृंखला चैत्र शुक्ल की प्रदोष तिथि को पूरी हुई। उस दिन समापन हुआ था।

लक्ष्मीरमण आचार्य ने स्वागत भाषण में अभियान का परिचय देते हुए पिछले 15 महीनों से चल रही गतिविधियों के बारे में बताया था।

लक्ष्मीनारायण आचार्य जी का उद्बोधन

आचार्य जी ने कहा कि ज्ञान प्राप्त करने के लिए हम भगवान से नित्य प्रार्थना करते हैं कि हमारी बुद्धि निर्मल हो और बहुत तेज़ हो । गायत्री तपोभूमि के पिछले 15 महीने से चल रहे महायज्ञ का उद्देश्य पूरे समाज की बुद्धि को निर्मल बनाना है। इसी उद्देश्य के लिए 125 करोड़ गायत्री जप, 125 लाख आहुतियों का यज्ञ, मंत्रलेखन की स्थापना, पुस्तकालयों की स्थापना और रुद्रयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, सरस्वती यज्ञ, महामृत्यंजय यज्ञ, नवग्रह यज्ञ, पितृ यज्ञ, यजुर्वेद यज्ञ, अथर्ववेद यज्ञ और सामवेद यज्ञ जैसे अग्निहोत्र अनुष्ठानों की श्रृंखला चली । उन्होंने कहा कि यज्ञ अभियान का

उद्देश्य मनुष्य को अपने कुसंस्कारों से मुक्त करना रहा है। भगवान कृष्ण ने भी अर्जुन को समझाया है कि यज्ञ के लिए किए गए कर्म के अलावा सारे कर्म बंधन है। इसलिए मनुष्य को आसक्ति (attachment) से रहित होकर कर्म करना चाहिए अर्थात् यज्ञ के लिए कर्म करना चाहिए।

तीनों दिन नरमेध यज्ञ की चर्चा रही। कई बार स्पष्ट किया गया कि नरमेध का अर्थ अपनी निजी इच्छाओं आकांक्षाओं को समाज के हित में छोड़ देना, त्याग करना है। स्वागताध्यक्ष ने अपने उद्बोधन में अच्छी तरह स्पष्ट किया कि हमारी संस्कृति और परंपरा में पशुबलि का निषेध तो है ही, हरे भरे वृक्षों को काटना और उन्हें यज्ञ के लिए काम में लाना भी निषिद्ध है। पशु बलि और नरबलि जैसे पाप मध्यकाल में आये अंधकार युग की देन है। उन्हीं दिनों पशुबलि और नरबलि जैसी प्रथाएं

आरंभ हुई। यज्ञ आयोजनों में कुसंस्कारों और अंधेरों का आधिपत्य हो गया।

विरोध का अभिवादन

नरमेध और नरबलि का अर्थ स्पष्ट करते हुए यह तथ्य बार-बार समझाया गया था कि दोनों में अंतर है। फिर भी लोग आम साधकों को भरमाने में लगे हुए थे। उनका उद्देश्य शायद इतना ही था कि भगवान कृष्ण की जन्मस्थली में जाग रही चेतना को धूमिल किया जाए। बाधाएं उत्पन्न करने के पीछे इसके सिवा कोई और तात्पर्य हो भी क्या सकता था। पूर्णाहुति महायज्ञ का दूसरा दिन था। आचार्यश्री यज्ञ का संचालन कर रहे थे। पंडित नीलकंठ शास्त्री आयोजन की व्यवस्था देख रहे थे। पंडितों का एक दल आया और उसने यज्ञशाला में ही नारेबाजी शुरु कर दी। कुछ कार्यकर्त्ता उन्हें रोकने के लिए उठे । यज्ञकुंड में आहुतियां दे रहे साधक भी उठे।

एक बार तो लगा कि विवाद बढ़ जाएगा। आचार्यश्री यह सब चुपचाप देख रहे थे । कुछ देर तक नारेबाज़ी का सिलसिला चलता रहा। विवाद बढ़ता देख आचार्य श्री उठे और उन पंडितों के पास गये। हाथ जोड़ कर उनका अभिवादन करते हुए बोले, “आप लोग यज्ञशाला के बाहर क्यों खड़े हैं। भीतर आइए न ।” पंडितों ने कहा, “आयोजन शास्त्र विरुद्ध है हम इसमें कैसे भाग ले सकते हैं” आचार्यश्री ने कहा, “अच्छा यज्ञ में भागीदार मत बनिए। आप प्रवचन पंडाल में विराजिए। आपको यज्ञ के विरोध में जो भी कहना हो वहां मंच से कहिएगा।” पंडित लोग पंडाल में चले गये। वहां 9:00 बजे तक बैठे रहे। देर तक बैठना उनके बस का नहीं था। वे अपना नाम पता और आपत्तियाँ लिख कर दे गए। साथ ही यह भी कह गये कि कल आकर मंच से अपनी बात कहेंगे। लेकिन अगले दिन भी वे समारोह शुरू होने से

पहले यज्ञ अग्निहोत्र के समय ही आ गये। वे यज्ञशाला के पास ही बैठ गये । पूर्णाहुति के बाद पंडितों को जब दक्षिणा आदि देकर सम्मानित किया जा रहा था तब वे यज्ञशाला के पास और खिसक कर आ गए। आचार्यश्री को पता नहीं क्या सूझा कि विदाई से पहले उन्होंने पंडितों के नाम पुकारे। उन्हें यज्ञशाला में बुलाया और वहीं शाल, श्रीफल और धोती कुर्ता देकर सम्मानित किया। भेंट स्वरूप प्रत्येक को 51 रुपये भी दिए। इस सम्मान से पंडितजन गदगद थे । नरमेध यज्ञ का विरोध करने और उसके आयोजकों को कोसने आये पंडितगण भावविभोर होकर वापस गये। जाते-जाते उन्होंने यज्ञशाला के पास बलियूप से बंधे साधकों को भी देखा। गूगल के अनुसार बालियूप का अर्थ है लकड़ी की खूँटी जिससे गाय, भैंस आदि बांधे जाते हैं। वे सांस्कृतिक पुनरुत्थान(cultural revival) के लिए अपने आपको

समर्पित करने आये थे। उन्हें देखकर पंडितजन भावविभोर से हो गए। चेहरे देख कर लग रहा था कि उनके मन में भी इसी तरह बलियूप से बंधे होने की इच्छा उठ रही है। उस इच्छा के पीछे भले ही कोई स्वार्थ हो, फिर भी उनकी आंखों में ललक थी। सम्मानित होकर बाहर आये पंडित काशीनाथ चतुर्वेदी ने तो कह भी दिया कि इस तरह हम भी नरमेध कर सकें तो कितना अच्छा रहे।

मंच पर विद्वानों और तपस्वियों के व्याख्यान क्रम से चल रहे थे। वे किसी सिद्धान्त की विवेचना करने के बजाय अपना अनुभव ज्यादा बता रहे थे। अनुभूतियों के कारण प्रतिपादन और भी सशक्त बन पड़ता था।

पंडित राधेश्याम कथावाचक की अनुभूति ने वहां उपस्थित साधकों को सराबोर सा कर दिया। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के पंडित राधेश्याम की लिखी काव्यात्मक

रामकथा घर-घर में पूजी जाती है। उत्तर भारत में भी
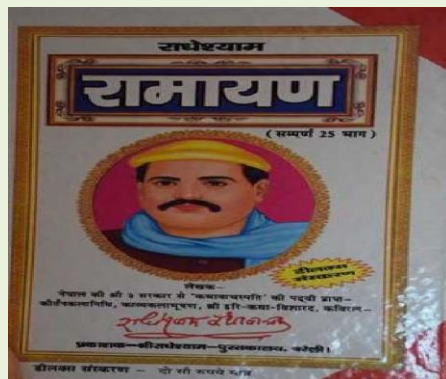
लोग इसे श्रद्धा और आदर से पढ़ते पाठ करते हैं। मंचीय उपयोग के लिए सर्वथा उपयुक्त यह रचना रामलीला कंपनियों और नाट्य प्रयोजनों के लिए रामचरित मानस से भी ज्यादा अपनाई जाती है। इसकी सरल रचना ही शायद वह कारण है जिसने इसे लोगों का कंठहार बनाया। जब हम इन पक्तियों को लिख रहे थे, हमें तो केवल वाल्मीक रामायण और तुलसीदास रामायण का ही ज्ञान था लेकिन राधेश्याम रामायण का नाम देखकर हमारे मन में जिज्ञासा उठी। हमने गूगल सर्च में इसके बारे में इतना कुछ पाया कि यहाँ पर इसका विवरण

देने का अर्थ है टॉपिक से भटकना। हमारे पाठक स्वयं ही सर्च करें बहुत कुछ मिल जायेगा।

“राधेश्याम रामायण” के लेखक राधेश्याम जी का उद्बोधन

राधेश्याम रामायण के नाम से मशहूर यह रचना पंडितजी ने 12 वर्ष की आयु में लिखना शुरू की थी और 18वां वर्ष बीतते-बीतते पूरी कर दी थी। उन्होंने अपने उद्बोधन में कहा, जिस राधेश्याम रामायण की इतनी प्रशंसा सुनी जाती है, वह 12 वर्ष का बालक लिख सके, यह संभव ही नहीं है। मुझ जैसा अशिक्षित तीसरी चौथी कक्षा का छात्र ऐसा दुस्साहस जुटाये यह तो और भी कठिन है लेकिन यह संभव हुआ है।

सच्चाई यह है कि मैंने इस ग्रंथ को नहीं लिखा। लिखते समय हर पल यह लगता रहा कि कोई शक्ति यह सब

करा रही है। इस ग्रंथ को लिखने से पहले मेरे पिताजी ने मुझसे सवालक्ष गायत्री मंत्र का पुरश्चरण कराया था। इसमें उस उपासना के परिणाम स्वरूप ही मैं यह ग्रंथ लिखने में समर्थ हो सका हूँ।'

उन्होंने कहा, 'यहाँ आने का एक कारण और भी था कि जिन श्रीराम की कथा मैंने लिखी है, उन्हीं के नाम वाले आचार्य श्रीराम के दर्शन कर सकूं। दोपहर से आया हूँ और यहाँ का वातावरण देखकर मैं फूला नहीं समा रहा हूँ। चारों तरफ जैसी स्थितियां है, उनमें कोई विद्वान यदि हमें गायत्री उपासना के माध्यम से सुधार की दिशा में ले जाता है तो प्रसन्न होना चाहिए। उस विद्वान का अनुसरण करना चाहिए।' वहां आये विशिष्ट महात्माओं में बड़ोदरा के संत स्वामी रामकल्याणानंद की आपबीती बहुत अनूठी थी।

संत स्वामी रामकल्याणानंद की आपबीती

उन्होंने समारोह के अगले दिन हुए नरमेध यज्ञ में आत्मदान कर दिया था। उन्होंने उपासना के संबंध में अपनी एक अनुभूति सुनाई।

स्वामी जी बड़ोदरा के पास एक कुंआ बनाना चाहते थे। उस प्रेरणा को साकार करते हुए काम शुरू किया। काफी कुछ खुदाई हो गई। एक मुकाम पर जाकर एक पत्थर आड़े आ गया। उसे तोड़कर हटाने में काफी जद्दोजहद करना पड़ी। हालांकि पत्थर तोड़ कर हटा दिया गया। पत्थर के जो टुकड़े कुंए के पास गिरे थे उन्हीं में एक टुकड़े पर प्रतिमा जैसी आकृति उभरी हुई थी। यहआश्चर्यजनक था उससे भी आशचर्यजनक यह था की कहीं से एक वृद्ध महिला आकर उस आकृति की पूजा करने लगी। पूजा के बाद उसने माला निकली और जप के लिए बैठ गयी।   स्वामी रामकल्याणानंद भैरव के

उपासक थे। लोग उन्हें भैरों बाबा और जागी बाबा कह कर पुकारते थे। उस वृद्ध महिला को एक पाषाणखंड की पूजा करते देख उन्हें गुस्सा आया। उन्होंने वृद्धा से वह जगह छोड़कर जाने के लिए कहा । वृद्धा ने हाथ जोड़कर विनती का भाव दर्शाया जैसे कह रही हो कि कुछ देर के लिए जप तप करने दें। बाबा पर इस अनुनय का कोई असर नहीं हुआ और डांटते हुए से बोले, "जानती नहीं कि मैं कौन हूँ, एक मिनट में बर्बाद कर दूंगा।" वृद्धा ने जप बीच में ही छोड़कर कहा, "कृपा करें महाराज मैं एक माला का जाप करके चली जाउंगी।" उसके स्वर में कातर प्रार्थना थी, साथ ही दृढ़ता भी। बाबा इस दृढ़ता के कारण और ज्यादा कुपित हो गये । वृद्धा की उपास्य प्रतिमा का तिरस्कार करने के इरादे से वे आगे बढ़े और लात मारने के लिए पांव उठाया। वे प्रतिमा पर लात जमा पाते इससे पहले ही न जाने क्या

हुआ कि उन्होंने जोर का धक्का खाया और लुढ़कते हुए कुंए में जा गिरे। गिरने का वेग इतना प्रबल था जैसे किसी ने उठाकर फेंक दिया हो। भैरों बाबा ने ही अपना अनुभव सुनाया कि उन्हें बाहर निकाला गया। बाहर निकालने के लिए एक चारपाई रस्सियों से बांधकर कुंए में उतारी गई थी। कुंआ तीस हाथ (लगभग बीस मीटर) गहरा खुद गया था। इतनी गहराई में गिरने पर भी ज्यादा चोट नहीं आई थी। बाबा ने उस वृद्धा को कुंए में उतरते और संभाल कर चारपाई पर लिटाते हुए देखा। वह बाबा के सिर पर हाथ रखे ऊपर तक आती अनुभव हुई। ऊपर आने के बाद वह न जाने कहां गायब हो गई। बाबा बेहोश हो गये और उसी हालत में अस्पताल लाये गये। तीन सप्ताह तक जीवन और मौत से संघर्ष करने के बाद वे संकट से उबर पाये।

अपनी आपबीती सुनाते हुए स्वामी रामकल्याणानंद ने कहा कि इस घटना के बाद उन्होंने अपना मन गायत्री की नियमित उपासना में लगाया। उपचार के तीन सप्ताह में उन्होंने गायत्री मंत्र की स्फुरणा कई तरह से अनुभव की ।

बलियूपों से बद्ध

नरमेध यज्ञ बलिदान या जलते हुए यज्ञकुंड में अपनी आहुति देना, जीवित जल मरना नहीं है। वह एक संस्कार है, एक व्रत बंधन है, जिसमें व्यक्ति को अपने क्षुद्र अहं का त्याग करना होता है। आचार्यश्री बलियूप से बंधे आत्मदानियों को समझा रहे थे। गायत्री तपोभूमि के प्रांगण में 12 स्तंभ स्थापित किए गए थे। एक स्तंभ से दो-दो, तीन-तीन व्यक्ति बंधे बैठे थे । उनके हाथ कच्चे सूत से बंधे हुए थे। इसी तरह पांव, गर्दन, पीठ और कमर भी बंधी हुई थी।

27 लोगों को बलियूप से बंधकर बैठने के लिए ज्यादा जगह की जरूरत नहीं थी। पर्याप्त स्थान था लेकिन तपोभूमि के बाहर लोगों का हुजूम जमा हुआ था। वे यह जानने के लिए लालायित थे कि जिस आयोजन को लेकर तरह-तरह की चर्चाऐं महीनों से चल रही थी, वह कैसा होता है।

आचार्यश्री ने संस्कार आरंभ कराने से पहले संक्षिप्त सा उद्बोधन दिया। उन्होंने कहा,

यह संन्यास की ही एक विधि है, ऐसे व्यक्ति जो गायत्री और यज्ञ को, ज्ञान और त्याग के आदर्श को जन-जन तक पहुँचाने के लिए अपना शेष जीवन लगा देना चाहते हैं, वे यहाँ उपस्थित हुए हैं। आगे इस तरह के उत्सर्ग और भी होंगे। धीरे-धीरे निस्वार्थ समाजसेवियों का, त्यागी तपस्वियों का एक बड़ा समुदाय तैयार होगा। वह

सनातन धर्म और संस्कृति के उद्धार के लिए काम करेगा।

बलियूप से बंधे साधकों को माताजी ने तिलक लगाया। उनके हाथों में अक्षत पुष्प दिये। षट्कर्म और आत्मशुद्धि के बाद हेमाद्रि संकल्प हुआ। उसके बाद साधकों के हाथ में कलावा बांधा गया । 'व्रतेन दीक्षामाप्रोति' मंत्र से आचार्यश्री कलावा बांध रहे थे और माताजी उनके हाथ में श्रीफल और प्रसाद रखती जा रही थी। अपनी निजी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को तिलाजंलि देकर गायत्री तपोभूमि में निवास करने की ललक इन साधकों में थी जिनके माध्यम से उन्होंने अपनी आकांक्षाओं की बलि दी थी। वह कह रहे थे

"हमें जिस काम में लगाया जाएगा, उसे करेंगे। वह बोझ उठाने का ही क्यों न हो।"

1.अशर्फीलाल ने नरमेध के तुरंत बाद कहा था। अपने गृह नगर में अच्छी वकालत चलती थी। मथुरा आना जाना शुरु हुआ। देखा कि पारिवारिक जिम्मेदारियाँ लगभग पूरी हो गई हैं। बच्चे अपने पैरों पर खड़े हो गये हैं। उन्हें हमारी जरुरत नही है। आचार्यश्री के सान्निध्य में आकर समाज के लिए ही काम करते रहने की उमंग उठी, इस उमंग ने उन्हें आत्मदान के लिए प्रेरित कर दिया। अशर्फीलाल जी को तपोभूमि में चल रहे संस्कृति विद्यालय का दायित्व सौंपा गया था।

2.कर्नाटक (तब मैसूर) के 24 वर्षीय युवक श्रीकदम नरमेध से पहले कुछ समय के लिए ही तपोभूमि ठहरे थे। दो वर्ष पहले यहाँ आना हुआ था। तीन चार दिन के प्रवास ने इस तरह मुग्ध कर लिया कि आगे चलकर यहीं बस जाने की ठान ली। श्रीकदम त्रिपाठी परिवार के सदस्य थे। उनके पूर्वज और पिता भी वेदशास्त्रों के

विद्वान थे। स्वयं श्रीकदम को वेदों और धर्मशास्त्रों के कई प्रसंग याद थे। सामवेद उन्हें कंठस्थ था ।

3.उत्तरप्रदेश में फतेहपुर के एक जमींदार परिवार से निकले संन्यासी ब्रह्मचारी योगेंद्र ने संस्कृति की साधना में अपने आपको फिर से दीक्षित किया। उन्होंने विधिवत संन्यास लिया था और अरसे तक चित्रकूट के जंगलों में तप तितिक्षा की साधना की थी। गायत्री तपोभूमि में प्राण प्रतिष्ठा के बाद जंगलों मे रहकर तप करने के बजाय तपोभूमि को उनने अपना साधना क्षेत्र चुन लिया।

महात्मा ब्रह्मस्वरूप जी कहा करते थे कि संन्यासी को एक ही जगह टिक कर नही रहना चाहिए। उन्होंने अपनी शरीर यात्रा का शेष समय आचार्यश्री के अनुसार ही व्यतीत करने की ठानी। उन्होंने यह कहते हुए उत्सर्ग किया कि मर्यादा का निर्वाह करते हुए मुझे निरंतर

चलते रहना होगा। आप एक जगह रोक कर नही रखेंगे। निरंतर विचरण करते रहने देंगे। आचार्यश्री ने कहा कि कोई शर्त मत रखिए। जिस समर्पण या त्याग में शर्त होती है। वह अधूरा रहता है।

यह सुनते ही महात्मा ब्रह्मस्वरूप ने अपने कान पकड़े और आचार्यश्री के चरणो में झुक कर प्रणाम किया।

रिंकी (फतेहपुर) के रामलाला, हंसवर (फैजाबाद) के कृपाशंकर त्रिपाठी, ब्रह्मचारी लक्ष्मीनारायण, उरई (जालौन) के बृजनारायण द्विवेदी, छपरा (चंपारन) के उमाकांत झा, आगरा के सीताराम अग्रवाल, बहराइच के भगवती प्रसाद श्रीवास्तव, मालेगाँव (नासिक) के मांगीलाल दामदा जैसे कितने ही नाम थे जिन्होंने नरमेध यज्ञ में अपनी इच्छाओं की आहुति दी। इनमें कुछ नरमेध के कर्मकांडो में सक्रिय भाग नहीं ले सके।

मन ही मन वे अपने आपको समाज की वेदी पर उत्सर्ग कर चुके थे ।

4.ब्रह्मचारी लक्ष्मीनारायण साठ वर्ष के साधु थे। लंबी दाढ़ी और जटा जैसे केश रखते थे। मंदिर में भगवती की प्रतिमा के पूजन आराधना और सेवा का दायित्व संभाला था। रात दो बजे उठकर नित्य कर्मों से निवृत्त हो जाते। तैयार होने में उन्हें तीस चालीस मिनट लगते। स्नान आदि से निपट कर मंदिर की सफाई श्रृंगार आदि कार्यो में लग जाते और पूरे दिन मंदिर परिसर का ध्यान रखते। सेवा पूजा से बचा समय स्वाध्याय में लगाते। उन्होंने अपने आप को बलि के लिए प्रस्तुत किया तो आचार्यश्री ने पीठ थपथपाते हुए कहा था, आपका अहं तो पहले ही विसर्जित हो चुका। संस्कार तो अब औपचारिकता मात्र रह गया है।

5. विद्यावती (42 वर्ष) ने नरमेध यज्ञ से पहले ही प्रतिदिन दस लोगों को गायत्री उपासना में प्रवृत्त करने का संकल्प लिया था। इस संकल्प को वे भलीभांति निभाती रहीं। गायत्री तपोभूमि में अपने आपको समर्पित करने तक उन्होंने 700 उपासक तैयार कर लिए थे। बिजनौर की निवासी विद्यावती ने अपने गृहनगर में एक यज्ञशाला भी बनवा ली थी। और वहीं यज्ञ करने लगी थी। उनकी जागरण यात्रा लुधियाना, पठानकोट, रोहतक और देवबंद तक चली थी।

बिजनौर से ही एक और समर्पण भगनी देवी शर्मा के रूप में आया था। 108 कुंडीय पूर्णाहुति महायज्ञ से करीब साल भर पहले उन्होंने अपने क्षेत्र में गायत्री उपासना का प्रचार आरंभ कर दिया था। नरमेध यज्ञ में अपने आपको एक आहुति के रूप में प्रस्तुत किया तो

शासकीय सेवा से निवृत्ति ले ली और वेदमाता की सेवा का मार्ग चुना ।

6.नेपाल की रतन कुमारी के मन में भी पारिवारिक दायित्वों से विराम लेने की प्रेरणा जगी। घर में विशेष दायित्व थे भी नहीं। पति ने पहले ही एक विवाह किया हुआ था। धोखा देकर, रतनकुमारी के परिवार वालों से झूठ बोल कर एक और विवाह कर लिया था।

रतनकुमारी का मन पहले भी जप तप और साधना में ही लगता था। लौकिक जीवन में धोखा खाया तो उसे तिलांजलि देने का निश्चय कर लिया। अपनी बेटी मीना को साथ ले कर आई । पूर्णाहुति महायज्ञ के समय हुए नरमेध में तो वे आत्मदान नहीं कर सकी। पिता और भाई ने इसके लिए अनुमति नहीं दी। वह माताजी के पास गई और कहने लगी कि मुझे आत्मनिर्णय का कोई अधिकार नही है क्या ? मेरे पिता और भाई अनुमति

नही देते तो मैं क्या अपने संकल्प का गला घोट दूं। कहते कहते रतनकुमारी बिलख उठी । वह विलाप कर रही थी क्या हम स्त्रियों के भाग्य में दूसरों की मनमर्जी झेलना ही लिखा है। पुरुष हमें चाहे जहाँ हांक दे, चाहे जैसा बर्ताव करे। हम उनकी इच्छाओं को ही मानते और गुनते रहें। रतनकुमारी का यह बिलखना आचार्य श्री भी देख रहे थे । पर वे कुछ बोले नहीं । उसकी बातें सुनकर माताजी की आँखे भी नम हो उठी थी। उन्होंने रतनकुमारी की पीठ पर हाथ रखा और कहा,

"रो मत बेटी । तुमने अपने आपको भगवान के मार्ग पर ले जाने का संकल्प लिया है। इस मार्ग पर चलने का निश्चय करने के बाद तो मीरा ने भी रजवाड़े और रनिवास की झूठी मर्यादाओं को तोड़ दिया था। तुम भी वैसा ही करो।"

माताजी ने पूछा, 'क्या अभी और तुरंत ऐसा करने की स्थिति मे हो । अभी बगावत करोगी तो घर के लोग यहाँ बखेड़ा खड़ा कर देंगे। अभी संस्कार नही हो पाया तो कोई बात नही। अभी घर जाओ और अपने पिता आदि को समझाओ । दृढ़ता से कहो । दृढ़ता से कहने पर वे तुम्हारी बात जरुर मान जाएंगे। हम लोग भी उन्हें यहाँ समझाएंगे।'

रतनकुमारी ने वैसा ही किया । उस समय तो वह अपने पिता और भाई के साथ घर चली गई। दो महीने बाद वापस आ गई। वह अपनी बेटी को भी साथ लेती आई थी। तपोभूमि में रहकर अध्ययन करती। कुछ समय तक अध्ययन और अभ्यास करने के बाद वह क्षेत्रों में गायत्री साधना का प्रचार करने जाने लगी, उन्होंने यज्ञ संचालन और व्यवस्था में निपुणता हासिल कर ली थी।

नरमेध यज्ञ में अपनी आहुति देने वाले साधकों का परिचय बहुत विस्तार की अपेक्षा रखता है। इन लोगों ने आगे चल कर तपोभूमि मे रहते हुए या वहाँ से बाहर जा कर भी संस्कृति की जो सेवा की वह अलग विषय है।

विरोध करने वालों के पास कहने को कुछ न बचा।

24 अप्रैल को हुए इस समर्पण के बाद नरमेध का विरोध करने वालों के पास कहने के लिए कुछ नहीं था। आर्यसमाज के एक प्रसिद्ध विद्वान उसी दिन शाम आचार्य श्री के पास उनके निवास पर गये। उन विद्वान का विरोध शांत नही हुआ था। बाद में वर्षों तक वे विषवमन करते रहे लेकिन नरमेध के बारे में उनके पास भी आलोचना के लिए कुछ नही था। उन्होंने आचार्यश्री

से शांत स्वर में कहा, अगर नरमेध का यही अर्थ है तो हमें उसके विरोध में शक्ति नहीं गवानी चाहिये थी। काश आप हम लोगों को पहले ही सब कुछ स्पष्ट बता देते । कुंठा और द्वेष से भरी यह विचित्र सराहना सुन कर वहां बैठे लोगो को अटपटा लगा। आचार्य श्री ने उस सराहना का स्वागत किया और कहा कि आपको जब भी लगे कि हम कुछ गलत कर रहे है तो हमें बता दिया करें। अभी आपने हमारा उत्साह बढ़ाया। आगे भी जब जैसा लगे, बताया करें तो हम लोग दूर तक साथ चल सकेगें।' आचार्यश्री ने यह बात सरल सहज भाव से कही थी। पता नही उन सज्जन ने किस रूप से ग्रहण किया लेकिन वहाँ बैठे लोग आचार्यश्री का मुँह ताकते रह गये। उन्हें मालूम था कि यह व्यक्ति मुखर विरोधी है और इस भेंट में भी कुछ न कुछ निंदनीय ढूंढ लेगा।